मङ्गल गीतांजलि

प्राचीन कवियों के वैराग्यप्रेरक गीतों भक्तियों का अनुपम संकलन

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ - कुन्दकुन्द - कहान - दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.)

www.mangalayatan.com

ॐ

मङ्गल गीताञ्जली

(प्राचीन कवियों के वैराग्यप्रेरक
गीतों-भक्तियों का अनुपम संकलन)

प्रकाशक :
तीर्थधाम मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट
सासनी - 204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

प्रथम संस्करण – 2019 : 2000 प्रतियाँ

(दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर प्रकाशित, मंगलवार, 03 सितम्बर 2019)

मुमुक्षुता की प्रगटता अथवा भावना/संकल्प ही इस पुस्तक का उचित मूल्य है।

मङ्गल गीताञ्जली के साथ, इसमें समाहित गीतों की संगीतमयी सी.डी. उपहार स्वरूप संलग्न है।

प्राप्तिस्थान :

- **तीर्थधाम मङ्गलायतन**
  अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी – 204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश)
  Mob. : 9997996346;
  Website : www.mangalayatan.com; e-mail : info@mangalayatan.com
- **तीर्थधाम चिदायतन**
  श्री मुकेश जैन महामन्त्री, जिला मेरठ-250404, उत्तर प्रदेश
  Mob. : 9837079003
- **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
  302, कृष्ण-कुंज, प्लॉट नं. – 30
  नवयुग सीएचएस लि., वी.एल. मेहता मार्ग
  विलेपार्ले (पश्चिम), मुम्बई – 400056
  e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com
- **श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर**
  29, गाँधी रोड, देहरादून-248001 (उत्तराखण्ड)
  फोन : 0135-2654661 / 2623131

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक : देशना कम्प्यूटर, जयपुर

आभाराभिव्यक्ति

जिनागम में उपलब्ध, प्राचीन जैन कवियों एवं विद्वानों द्वारा रचित, वर्तमान में लुप्तप्राय: वैराग्यपोषक व आध्यात्मिक भक्तियाँ; बारह भावनाएँ एवं आत्मावलोकन करानेवाले भजनों की इस प्रस्तुति को तैयार करके, जन-जन तक पहुँचाने का, आपकी संस्था **तीर्थधाम मङ्गलायतन** का यह अनुपम प्रयास है।

इस दिशा में, पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त, पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी द्वारा संकलित, प्राचीन भजनों और वैराग्यमय भक्ति-गीतों को समाहित करके, इस संगीतमय अद्‌भुत प्रस्तुति को प्रस्तुत करते हुए, हम, हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

सर्व प्रथम हम, सभी आदरणीय कवियों के प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन समर्पित करते हैं, जिनके रचे हुए गीत, हमने उनकी प्रत्यक्ष व परोक्ष आज्ञा से अथवा बिना आज्ञा के ही, इस प्रस्तुति में शामिल कर लिये हैं। सभी के प्रति पुन:-पुन: आभार।

इस प्रस्तुति को देहरादून की श्रीमती वीना जैन के निर्देशन में, दिल्ली पब्लिक स्कूल अलीगढ़ के संगीत विभाग के शिक्षक श्री आर. के. बज्जू ने संगीतबद्ध किया है। प्रस्तुति

में समाहित गीतों, भक्तियों आदि को, जिन्होंने अपना स्वर प्रदान किया है, वे हैं—देवेन्द्र जैन, ग्वालियर; देवांश जैन, अलवर; श्रीमती अमी पारेख, राजकोट; दिल्ली पब्लिक स्कूल अलीगढ़ के श्री अमित उपाध्याय एवं श्रीमती चारू वार्ष्णेय ने।

हम अपने सभी सहयोगियों व कलाकारों के प्रति, अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। इस प्रस्तुति में कुछ भक्तियों को, दूसरी संस्थाओं द्वारा पूर्व में जारी की गयी प्रस्तुतियों से भी लिया गया है। हम इसके लिए इन संस्थाओं व कलाकारों के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

आपसे सपरिवार, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** में पधारकर, यहाँ विराजित जिनेन्द्र भगवन्तों के दर्शन और यहाँ के कण-कण में गुंजायमान देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का लाभ लेने का, हमारा पुनः पुनः हार्दिक अनुरोध है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन
आगरा-अलीगढ़ मार्ग,
सासनी-204216 (हाथरस) उ०प्र०

Mob. : 9997996346, 9756633800
info@mangalayatan.com
www.mangalayatan.com

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

खण्ड - 1 : नमन! प्रत्यक्ष-उपकारी पूज्य कहानगुरुदेवश्री को -

1. तीर्थंकरवत् कहानगुरु ने.... 1
2. कहानगुरु का **मङ्गलायतन**.... 3

खण्ड - 2 : वन्दन! देव-शास्त्र-गुरु को

3. महावीराष्टक-स्तोत्र.... 5
4. माँ जिनवाणी तेरो नाम.... 7
5. देखो जी आदीश्वरस्वामी.... 9
6. समझ उर धर कहत गुरुवर.... 10

खण्ड - 3 : वैराग्यप्रेरक भक्तियाँ एवं गीत

7. पुद्गल का क्या विश्वासा... 13
8. हम तो कबहुँ न निज घर आये.... 14
9. हम ना किसी के.... 15
10. आपा नहिं जाना तूने.... 16
11. अरे जिया ! जग धोखे.... 17
12. मेरा आज तलक प्रभु करुणापति.... 19
13. चिन्मूरत दृग्धारी की मोहि... 21

14. सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे.... 23
15. आतम रूप अनुपम अद्‌भुत.... 24
16. ज्ञानी जीव निवार भरम.... 25
17. हमको कछु भय ना रे.... 27
18. जीवन के परिनामनिकी यह.... 29
19. ओ जाननहारे,.... 30
20. ओ प्यारे, परदेशी पन्छी.... 31
21. भूलकर अपना घर.... 32
22. आतम अनुभव करना.... 33
23. जो जो देखी वीतराग ने.... 34
24. चरखा चलता नाहीं.... 35

खण्ड - 4 : आत्म-सम्बोधन

25. बहु पुण्य-पुञ्ज प्रसंग... (अमूल्य तत्त्व-विचार) 37
26. आत्म चिंतन का ये समय.... 39
27. सांत्वनाष्टक.... 40
28. ज्ञानाष्टक.... 42
29. अपूर्व-अवसर.... 45
30. स्वतः परिणमति वस्तु के.... 49
31. आत्मदेव-वन्दना.... 51
32. चेतन क्यों पर अपनाता है... 53

33. मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ,... 55
34. हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम... (आत्म-कीर्तन) 56
35. चेतन है तू.... 57
36. जिया कब तक उलझेगा... 59

खण्ड - 5 : बारह-भावनाऐं

37. **बारह-भावना** - (कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी) 60
38. **बारह-भावना** - (कविवर पण्डितश्री जयचन्द छाबड़ा) 62
39. **बारह-भावना** - (बाबू जुगलकिशोरजी जैन 'युगल') 64
40. **बारह-भावना** - (कविवर पण्डितश्री मंगतरायजी) 67

खण्ड - 6: समाधिमरण

41. समाधिमरण पाठ 73

हमारे जीवनशिल्पी
धर्मपिता
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के कर-कमलों में
सविनय समर्पित!

मङ्गलायतन, परिवार

खण्ड-1

नमन! प्रत्यक्ष-उपकारी पूज्य कहानगुरुदेवश्री को

सर्व प्रथम नमन! अपने परम-उपकारी आध्यात्मिक -सन्त, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के चरणों में —

1

तीर्थंकरवत् कहान गुरु ने...

तीर्थंकरवत् कहान गुरु ने, कैसा गजब का काम किया।
दिव्यवाणी कर तीर्थंकर का, विरह हमें भुला दिया॥
मिथ्यातम की घटा हटाकर, ज्ञान-भानु प्रकाश किया।
जिनागम का सार बताकर, जीवों का उद्धार किया॥

भक्ति भावना उर में जागी, याद तुम्हारी आती है।
कहाँ गये तुम कहान गुरु, तेरी याद हमें रुलाती है॥
तुम आदर्श हमारे हो, ये **मङ्गलायतन** तुम्हारा है।
जय-जयकार से गुरुवर तुम्हारी, गूँजा जग ये सारा है॥
गूँजा जग ये सारा है।

भारत में उत्तरप्रदेश प्रान्त की हृदयस्थली अलीगढ़ में निर्मित 21वीं शती का विशुद्ध जिनायतन सङ्कुल एवं समाजसेवा का उत्कृष्ट संस्थान

2

कहानगुरु का मङ्गलायतन...

आदिप्रभु का, वीरप्रभु का, बाहुबलीजी का आयतन।
मंगलमय रे, मंगलमय रे, कहानगुरु का **मङ्गलायतन** ।टेक ॥

प्रथम विराजें आदिप्रभुजी, ऋषभदेव सादर वंदन।
ध्यानमात्र से भक्तजनों के, मिटेंगे सब भव दु:ख क्रंदन ॥
मंगलमय रे, मंगलमय रे, कहानगुरु का **मङ्गलायतन** ॥1 ॥

वर्धमान महावीर जिनस्वामी के चरणों में मेरा वंदन।
चारों गति में भटका हूँ, अब कटेंगे दु:ख मेरे प्रतिक्षण ॥
मंगलमय रे, मंगलमय रे, कहानगुरु का **मङ्गलायतन** ॥2 ॥

बाहुबलीजी की शरणा पाकर, धन-धन होंगे हम सब जन।
स्व-पर विवेक जगेगा उर में, मेटेंगे मिथ्यादर्शन ॥
मंगलमय रे, मंगलमय रे, कहानगुरु का **मङ्गलायतन** ॥3 ॥

गगनचुम्बी मानस्तंभ प्यारा, विराजें आदिनाथ भगवन्।
दर्शनमात्र से भव्यजनों के, मान गले साधें आतम ॥
मंगलमय रे, मंगलमय रे, कहानगुरु का **मङ्गलायतन** ॥4 ॥

कहानगुरु के **मङ्गलायतन** पर, तन-मन-धन सब है अर्पण।
भेदज्ञान की ज्योति जला करूँ निज आतम का अभिनंदन ॥
मंगलमय रे, मंगलमय रे, कहानगुरु का **मङ्गलायतन** ॥5 ॥

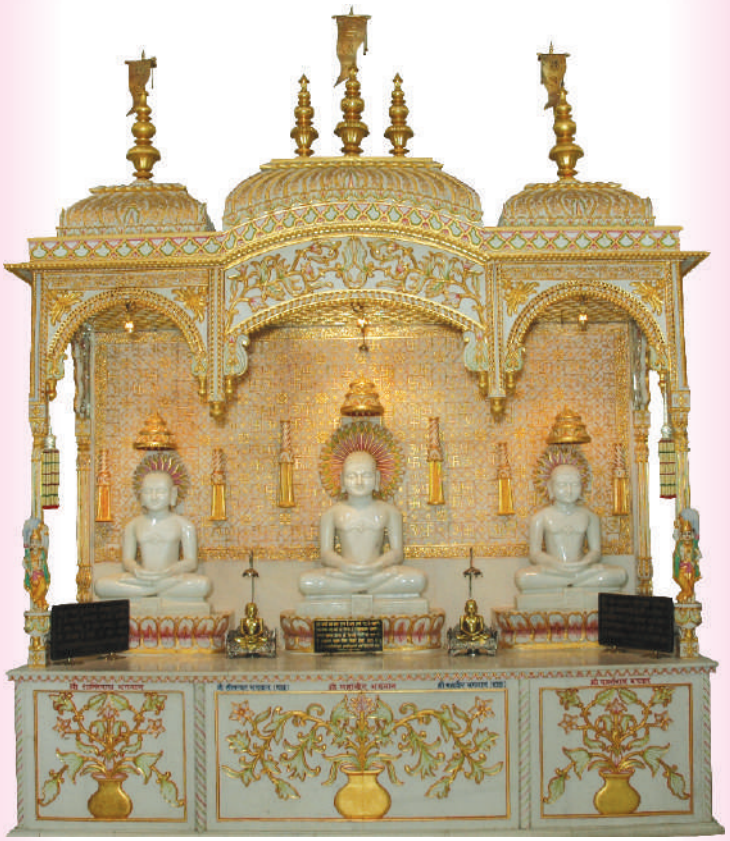

तीर्थधाम मङ्गलायतन के भगवान महावीर जिनमन्दिर में
विराजित मूलनायक श्री महावीरस्वामी सहित मुख्य वेदी का दृश्य

खण्ड-2
वन्दन! देव-शास्त्र-गुरु को

3

महावीराष्टक-स्तोत्र

(कविवर पण्डितश्री भागचन्दजी)

जिनके चेतन में दर्पणवत् सभी चेतनाचेतन भाव।
युगपद् झलके अन्त-रहित हो ध्रुव-उत्पाद-व्ययात्मक भाव॥
जगत्साक्षी शिवमार्ग-प्रकाशक जो हैं मानों सूर्य-समान।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥1॥

जिनके लोचनकमल[१] लालिमा-रहित और चंचलता-हीन।
समझाते हैं भव्यजनों को बाह्याभ्यन्तर क्रोध-विहीन॥
जिनकी प्रतिमा प्रकट शान्तिमय और अहो है विमल अपार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥2॥

नमते देवों की पंक्ति की मुकुट-मणि का प्रभासमूह।
जिनके दोनों चरण-कमल पर झलके देखो जीव-समूह॥
सांसारिक ज्वाला को हरने जिनका स्मरण बने जलधार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥3॥

जिनके अर्चन के विचार से मेंढक भी जब हर्षितवान।
क्षणभर में बन गया देवता गुणसमूह और सुक्खनिधान॥

१. नेत्र कमल

तब अचरज क्या यदि पाते हैं सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥4॥

तप्तस्वर्ण-सा तन है, फिर भी तनविरहित जो ज्ञानशरीर।
एक रहें होकर विचित्र भी, सिद्धारथ राजा के वीर॥
होकर भी जो जन्मरहित हैं, श्रीमन् फिर भी न रागविकार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥5॥

जिनकी वाणीरूप गंगा नयलहरों से हीन-विकार।
विपुल ज्ञान-जल से जनता का करती हैं जग में स्नान॥
अहो आज भी इससे परिचित ज्ञानीरूपी हंस अपार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥6॥

तीव्रवेग त्रिभुवन का जेता काम-योद्धा बड़ा प्रबल।
वयकुमार में जिनने जीता उसको केवल निज के बल॥
शाश्वत सुख शान्ति के राजा बनकर जो हो गये महान।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥7॥

महामोह-आतंक शमन को जो हैं आकस्मिक उपचार।
निरापेक्ष बन्धु हैं जग में जिनकी महिमा मंगलकार॥
भवभय से डरते सन्तों को शरण तथा वर गुण भंडार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार॥8॥

(दोहा)

महावीराष्टक स्तोत्र को, 'भाग' भक्ति से कीन।
जो पढ़ ले एवं सुने, परमगति हो लीन॥

4

माँ जिनवाणी तेरो नाम...

(पण्डित श्री राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर)

माँ जिनवाणी तेरो नाम, सारे जग में धन्य है।
तेरी उचारै आरती माँ, तेरो नाम धन्य है ॥ टेक ॥

ज्ञान की ज्योति तू ही जलाती।
भक्तों को भगवान तू ही बनाती।
अमृत पिलाती, मारग दिखाती, तेरो नाम धन्य है।
माँ जिनवाणी ॥1 ॥

अरिहन्त भाषित जिनवाणी प्यारी
गणधर ऋषि और मुनियों ने धारी ॥
जीवन की नैय्या को तू तारती माँ, तेरो नाम धन्य है।
माँ जिनवाणी ॥2 ॥

तेरे श्रवण से है महिमा समायी।
चैतन्य चैतन्य की धुनि आई ॥
संतों के हृदय को, ईश्वर के घर को, तेरे गुंजाते छंद हैं।
माँ जिनवाणी ॥3 ॥

सुनने से संसार का रस शिथिल हो।
गुनने से ज्ञायक का मंगल मिलन हो।
तुमको नमन है, तुमको नमन है, तेरो नाम धन्य है।
माँ जिनवाणी ॥4 ॥

तीर्थधाम मङ्गलायतन में कृत्रिम कैलाशपर्वत पर
विराजित भगवान आदिनाथ को 111'' उन्नत मनोहारी जिनबिम्ब

5

देखो जी आदीश्वरस्वामी...

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी)

देखो जी आदीश्वरस्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग[१] विराजे, आसन थिर ठहराया है ॥टेक॥

जगत् विभूति भूति[२] सम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा, आशा वासा, नासा-दृष्टि सुहाया है ॥1॥

कंचनवरन[३] चले मन रंच न, सुर-गिरि[४] ज्यों थिर थाया है।
जास-पास[५] अहि[६] मोर मृगी[७] हरि[८], जाति विरोध नसाया है ॥2॥

शुद्ध उपयोग हुताशन[९] में जिन, वसुविधि[१०] समिध[११] जलाया है।
श्यामलि[१२] अलकावलि[१३] सिर सोहें, मानो धुआँ उड़ाया है ॥3॥

जीवन-मरन अलाभ लाभ जिन, सबको साम्य बनाया है।
सुर[१४] नर[१५] नाग[१६] नमहिं पद जाके, 'दौल' तास जस गाया है ॥4॥

---

१. सुन्दर; २. राख; ३. स्वर्ण का पीलापन; ४. सुमेरुपर्वत; ५. आस-पास; ६. सर्प; ७. हिरण; ८. सिंह; ९. अग्नि; १०. आठ कर्म; ११. हवन-सामग्री; १२. काले-भूरे; १३. घुँघराले बाल; १४. इन्द्र; १५. नरेन्द्र; १६. धरणेन्द्र

6

समझ उर धर, कहत गुरुवर,....

(आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द जैन कृत
जैन-सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला के सातवें भाग से संकलित)

समझ उर धर, कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घड़ी है।
भव उदधि तन अथिर नौका, बीच मँझधारा पड़ी है॥ टेक॥

आत्म से है पृथक् तन-धन, सोच रे मन कर रहा क्या?
लखि अवस्था कर्मजड़ की, बोल उनसे डर रहा क्या?
ज्ञान-दर्शन चेतना सम, और जग में कौन है रे?
दे सके दु:ख जो तुझे वह, शक्ति ऐसी कौन है रे?
कर्म सुख-दु:ख दे रहे हैं, मान्यता ऐसी करी है।
चेत-चेतन प्राप्त अवसर, आत्म चिन्तन की घड़ी है॥
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घड़ी है।
जिस समय हो आत्मदृष्टि, कर्म थर-थर काँपते हैं।
भाव की एकाग्रता लखि, छोड़ खुद ही भागते हैं॥
ले समझ से काम या फिर, चतुर्गति ही में विचर ले।
मोक्ष अरु संसार क्या है, फैसला खुद ही समझ ले॥
दूर कर दुविधा हृदय से, फिर कहाँ धोखा धड़ी है।
चेत-चेतन प्राप्त अवसर, आत्म चिन्तन की घड़ी है॥
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घड़ी है॥
कुन्दकुन्दाचार्य गुरुवर, यह सदा ही कहि रहे हैं।
समझना खुद ही पड़ेगा, भाव तेरे बहि रहे हैं॥

शुभक्रिया को धर्म माना, भव इसी से धर रहा है।
है न पर से भाव तेरा, भाव खुद ही कर रहा है॥
है निमित्त पर दृष्टि तेरी, बान ही ऐसी पड़ी है।
चेत-चेतन प्राप्त अवसर, आत्म चिन्तन की घड़ी है॥
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घड़ी है॥
भाव की एकाग्रता रुचि, लीनता पुरुषार्थ कर ले।
मुक्ति बन्धन रूप क्या है, बस इसी का अर्थ कर ले॥
भिन्न हूँ पर से सदा मैं, इस मान्यता में लीन हो जा।
द्रव्य-गुण-पर्याय ध्रुवता, आत्म सुख चिर नींद सो जा॥
आत्म गुणधर लाल अनुपम, शुद्ध रत्नत्रय जड़ी है।
चेत-चेतन प्राप्त अवसर, आत्म चिन्तन की घड़ी है॥
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घड़ी है॥

तीर्थधाम मङ्गलायतन की धन्य-मुनिदशा में आचार्य भगवन्त द्वारा प्रदत्त धर्मदेशना का अमृतपान करते हुए मुनिराज व श्रावकगण।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में स्थापित **धन्य-मुनिदशा** का वैराग्यप्रेरक दृश्य

खण्ड-3

वैराग्यप्रेरक भक्तियाँ एवं गीत

7

पुद्गल का क्या विश्वासा...

(कविवर पण्डित नवनजी)

पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा[१]।
जैसे चमत्कार बिजली का, और इन्द्रधनुष आकाशा॥ टेक॥

एक दिन ऐसा होगा रे लोगों, जंगल होगा वासा।
इस तन पर हल चल जाएँगे और पशु चरेंगे घासा॥1॥

झूठा तन-धन, झूठा यौवन, झूठा है जग सारा।
झूठे ठाठ है दुनिया के, और झूठा है जग वासा॥2॥

इक बार श्री जिनजी का, भजले तू नाम निराला।
नवन कहे क्षण भी न भूलों, जब तक है घट में श्वासाँ[२]॥3॥

---

१. बताशा; २. श्वास

8

हम तो कबहुँ न निज घर आये....

(कविवर पण्डितश्री द्यानतरायजी)

परघर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ॥हम तो. ॥

परपद निजपद मानि मगन ह्वै, पर परनति लपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुखकंद मनोहर, आतम गुण नहिं गाये ॥1 ॥

नर पशु देव नरक निज मान्यो, परजयबुद्ध लहाये।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, चेतन भाव न भाये ॥2 ॥

हित अनहित कछु समझ्यो नाहीं, मृगजलबुध[1] ज्यों धाये।
'द्यानत' अब निज-निज, पर-पर है, सद्गुरु बैन[2] सुहाये ॥3 ॥

१. मृगतृष्णारूपी बुद्धि; २. वचन

9

हम ना किसी के....

(कविवर पण्डितश्री द्यानतरायजी)

हम ना किसी के कोई ना हमारा, झूठा है जग का व्यवहारा।
तन सम्बन्ध सकल परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ॥1 ॥

पुण्य उदय सुख की बढ़वारा, पाप उदय दुःख होत अपारा।
पुण्य-पाप दोऊ संसारा, मैं सब देखन-जाननहारा ॥2 ॥

मैं तिहुँ जग तिहुँ काल अकेला, पर संजोग भया भव मेला।
थिति[१] पूरी कर खिर-खिर जाँहि, मेरे हर्ष शोक कछु नाहिं ॥3 ॥

राग भावतें सज्जन जानें, द्वेष भावतें दुर्जन मानें।
राग-द्वेष दोऊ मम नाहिं, द्यानत मैं चेतन पद माहिं ॥4 ॥

---

१. समय

10

आपा नहिं जाना तूने,...

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी)

आपा नहिं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे ॥टेक॥

देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगचारी[१] रे ॥1॥

निज-निवेद[२] बिन घोर परीषह, विफल कही जिनसारी रे ॥2॥

शिव चाहे तो द्विविधि[३] कर्म तैं, कर निजपरनति न्यारी रे ॥3॥

'दौलत' जिन निजभाव पिछान्यौ, तिन भवविपत विदारी रे ॥4॥

१. मोक्षमार्गी; २. आत्मदेव; ३. द्रव्यकर्म-भावकर्म

11

अरे जिया! जग धोखे...

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी)

अरे जिया! जग धोखे की टाटी[१] ॥टेक॥

झूठा उद्यम[२] लोग करत हैं, जिनमें निशदिन घाटी[३] ॥1॥

जानबूझ कर अन्ध बने हैं, आखिन बाँधी पाटी[४] ॥2॥

निकल जाँयगे प्राण छिनक में, पड़ी रहेगी माटी[५] ॥3॥

'दौलतराम' समझ मन अपने, दिल की खोल कपाटी[६] ॥4॥

१. चित्रपट; २. पुरुषार्थ; ३. नुकसान; ४. पट्टी; ५. मिट्टी; ६. दरवाजे

तीर्थधाम मङ्गलायतन के भगवान बाहुबली जिनमन्दिर में
स्थापित भगवान बाहुबलीस्वामी एवं मुनिराज भरतस्वामी व
मुनिराज बाहुबलीस्वामी के भाववाही खड्गासन जिनबिम्ब।

12

मेरा आज तलक प्रभु करुणापति....

(कविवर पण्डितश्री 'चमन'जी)

मेरा आज तलक[१] प्रभु करुणापति
थारे चरणों में जियरा गया ही नहीं।
मैं तो मोह की नींद में सोता रहा
मुझे तत्त्वों का दरस भया ही नहीं ॥टेक॥

मैंने आतम बुद्धि बिसार[२] दई,
और ज्ञान की ज्योति बिगाड़ लई।
मुझे कर्मों ने ज्यों त्यों फंसा ही लिया,
थारे चरणों में आन दिया ही नहीं ॥1॥

प्रभु नरकों में दु:ख मैंने सहे,
नहीं जायें प्रभु अब मुझसे कहे।
मुझे छेदन भेदन सहना पड़ा,
और खाने को अन्न मिला ही नहीं ॥2॥

मैं तो पशुओं में जाकर के पैदा हुआ,
मेरा और भी दु:ख वहाँ ज्यादा हुआ।
किसी माँस के भक्षी ने आन हता[३],
मुझ दीन को जीने दिया ही नहीं ॥3॥

१. तक; २. भुलाना; ३. मारा

मैं तो स्वर्गों में जाकर देव हुआ,
मेरे दु:ख का वहाँ भी न छेद हुआ,
मैं तो आयु को यूँ ही बिताता रहा,
मैंने संयम भार लिया ही नहीं ॥4॥

प्रभु उत्तम नरभव मैंने लहा,
और निशदिन विषयों में लिप्त रहा।
माता पिता प्रियजन ने भी मुझे,
कभी चैन तो लेने दिया ही नहीं ॥5॥

मैंने नाहक[1] जीवों का घात किया,
और पर धन छलकर खोश[2] लिया।
मेरी औरों की नारी पे चाह रही,
मैंने सत तो भाषण दिया ही नहीं ॥6॥

मैं तो मोह की नींद में सोता रहा,
मैंने आतम दरस किया नहीं।
मैं तो क्रोध की ज्वाला में भस्म रहा,
मैंने शान्ति सुधा रस पिया ही नहीं ॥7॥

जिनवर प्रभु अब सुनिये तो जरा,
मेरा पापों से डरता है जियरा।
खड़ा थारे चरणों में ये दास चमन,
मैंने और ठिकाना लिया ही नहीं ॥8॥

१. व्यर्थ; २. लूटना

13

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहि,...

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी)

चिन्मूरत दृग्धारी[१] की मोहि, रीति लगत है अटापटी ॥टेक॥

बाहिर नारकीकृत दुःख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी।
रमत अनेक सुरनि[२] संग पै तिस, परनतितैं नित हटाहटी ॥1॥

ज्ञान-विराग शक्ति तैं विधिफल, भोगत पै विधि घटाघटी।
सदननिवासी[३] तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी ॥2॥

जे भवहेतु अबुधके[४] ते तस, करत बन्ध की झटाझटी।
नारक पशु तिय[५] षंढ[६] विकलत्रय[७], प्रकृतिनकी[८] ह्वै कटाकटी ॥3॥

संयम धर न सकै पै संयम, धारन की उर चटाचटी।
तासु सुयश[९] गुन की 'दौलत' के, लगी रहै नित रटारटी ॥4॥

---

१. सम्यग्दृष्टि; २. देवियों; ३. गृहवासी; ४. अज्ञानी; ५. स्त्री; ६. नपुंसक; ७. द्वीन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौन्द्रिय; ८. गतिकर्म; ९. प्रसिद्धि

तीर्थधाम मङ्गलायतन में विराजित गगनचुम्बी मनोहारी मानस्तम्भ

14

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे....

(कविवर पण्डितश्री भागचन्दजी)

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे, आतम रूप अबाधित ज्ञानी ।टेक ॥

रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानि।
दहन दहत जिमि सदन[1] न तद्गत, गगन दहन ताकी विधिठानी[2] ।।1 ॥

वरणादिक विकार पुद्गल के, इनमें नहिं चैतन्य-निशानी।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ।।2 ॥

मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत्[3] लीला ठानी।
मिलो निराकुलस्वाद न यावत, तावत परपरणति हितमानी ।।3 ॥

भागचन्द, निरद्वन्द निरामय[4], मूरति निश्चय सिद्ध समानी।
नित अकलंक अबंक संग बिन, निर्मल पंक[5] बिना जिमि पानी ।।4 ॥

---

१. जिस तरह जलती हुई अग्नि मकान को जला देती है; २. उस तरह आकाश को नहीं जला सकती; ३. सम्पूर्ण प्रदेशों में; ४. रोगरहि; ५. कीचड़

15

आतम रूप अनुपम अद्‌भुत,....

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी)

आतम रूप अनुपम अद्‌भुत, याहि लखैं भवसिंधु तरो ॥टेक॥

अल्पकाल में भरतचक्रधर, निज आतम को ध्याय खरो।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे[१], ततछिन पायो लोक शिरो ॥1॥

या बिन समझे द्रव्यलिंग मुनि, उग्र तपन कर भार भरो।
नव ग्रीवक पर्यन्त जाय चिर, फेर भवार्णव[२] माहिं परो ॥2॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, येहि जगत में सार नरो।
पूरव शिवको गये जाहिं अब, फिर जै हैं यह नियत करो ॥3॥

कोटि ग्रन्थ को सार यही है, ये ही जिनवानी उचरो।
'दौल' ध्याय अपने आतम को, मुक्तरमा तब वेग वरो ॥4॥

१. ज्ञान; २. भवचक्र

16

ज्ञानी जीव निवार भरम...

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी)

ज्ञानी जीव निवार भरम तम, वस्तु स्वरूप विचारत ऐसे ॥टेक॥

सुत तिय बन्धु धनादि प्रकट पर, ये मुझते हैं भिन्न प्रदेशे।
इनकी परिणति है इन आश्रित, जो इनभाव परिणमे वैसे ॥1॥

देह अचेतन चेतन मैं इन, परिनति होय एकसी कैसे।
पूरन गलन स्वभाव धरे तन, मैं अज[1] अचल अमल नभ जैसे ॥2॥

पर परिणमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा राग-रुष[2] द्वन्द भये से।
नसे ज्ञान निज फँसे बन्ध में, मुक्ति होय समभाव लये से ॥3॥

विषय चाह दवदाह नशे नहिं, बिन निज सुधा सिन्धु पाये से।
अब जिन बैन सुने श्रवनन तैं, मिटे विभाव करूँ विधि तैसे ॥4॥

ऐसा अवसर कठिन पाय अब, निज हित हेत विलम्ब न करे से।
पछतावो बहु होय सयाने चेतन, 'दौल' छूटो भव भय से ॥5॥

---

१. अनादिनिधन; २. द्वेष

देह का भक्षण करनेवाली स्यालिनी के प्रति भी कोई द्वेष नहीं। तिर्यंचकृत उपसर्ग से पूर्णत: उदासीन, समाधि में लीन उसे भगवन्त अद्वितीय पुरुषार्थ के बल पर क्षायिकश्रेणी मांडकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

17

हमको कछु भय ना रे,...

(कविवर पण्डितश्री बुधजनजी)

हमको कछु भय ना रे, जान लियो संसार ॥टेक॥

जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मंझार।
निश्चयभेद कछू भी नाहीं, भेद गिनै संसार ॥1॥

परवश ह्वैं आपा विसारि के, राग-द्वेष को धार।
जीवत मरत अनादि काल तैं, यौं ही हैं उरझार ॥2॥

जाकरि जैसे जाहि समय में, जे होता जा द्वार।
सो बनि है टरि है कछु नाहिं, करि लीनौ निरधार ॥3॥

अगनि जरावै[१] पानी बोवे[२], बिछुरत-मिलत अपार।
सो पुद्गल रूपी-मैं 'बुधजन' सबको जाननहार ॥4॥

१. जलाती; २. गलावे

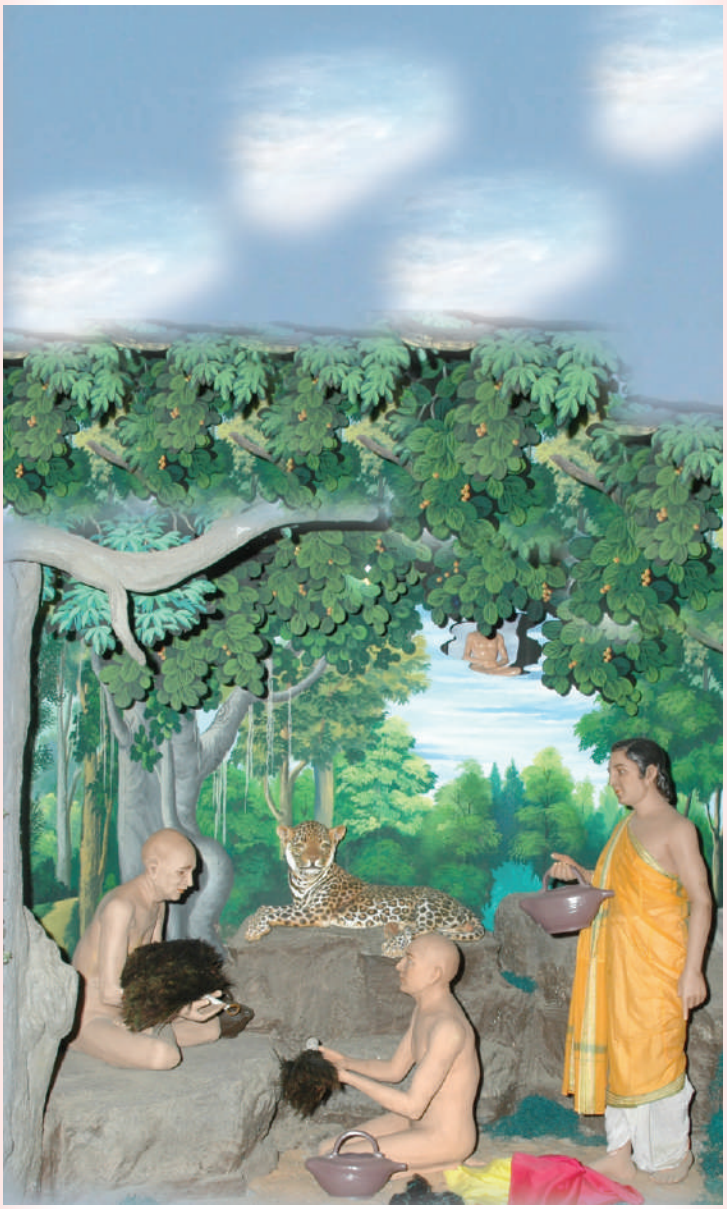

तीर्थधाम मङ्गलायतन की *धन्य-मुनिदशा* में
दिगम्बर जैनेश्वरी-दीक्षा के प्रसंग का भावभीना दृश्य

18

जीवन के परिनामनिकी यह,...

(कविवर पण्डितश्री भागचन्दजी)

जीवन के परिनामनिकी यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी ॥टेक॥

नित्य निगोदमाहितै कढ़िकर[१], नर परजाय पाय सुखदानी।
समकित लहि अन्तर्मुहुर्त में, केवल पाय वरै शिवरानी ॥1॥

मुनि एकादश गुणथानक चढ़ि, गिरत तहातें चित भ्रम ठानी।
भ्रमत अर्धपुद्गल परिवर्तन, किञ्चित् ऊन[२] काल परमानी ॥2॥

निज परिनामनिकी सम्भाल में, तातै गाफिल हवै मत प्रानी।
बन्ध मोक्ष परिनामनिही सों, कहत सदा श्रीजिनवरवानी ॥3॥

सकल उपाधिनिमित्त भावनिसों, भिन्न सुनिज परनतिको छानी।
ताहि जानि रुचि ठान होहु थिर, 'भागचन्द' यह सीख सयानी ॥4॥

---

१. निकलकर; २. कम

19

ओ जाननहारे,....

(आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द जैन द्वारा संकलित
जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला के सातवें भाग से संकलित)

ओ जाननहारे, जान जगत है असार
तीन लोक अरु तीन काल में शुद्धातम इक सार

पुद् अरु गल स्वभाव से ही ये परमाणु परिणमते।
बंधते बिखरते क्षण क्षण में, अरु दिखते एकाकार॥

मनोहर अरु अमनोहर वस्तु विध-विध रूप बदलते।
हर्ष विषाद करे जीव मिथ्या अज्ञानता अपार॥

चेतन दर्पण निज रस से ही तन धन प्रकाशित करता।
भेदज्ञान बिन निज को भूला, महिमा जड़ की अपार॥

मैं इक चेतन सदा अरूपी, परमाणु सब न्यारे।
इमि जानि जड़ महिमा तज, ध्या निज चेतन शिवकार॥

20

ओ प्यारे, परदेशी पन्छी....

(कविवर पण्डितश्री अमोलकजी)

ओ प्यारे, परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा।
तेरा प्यारा पिंजरा पीछे, यहाँ जलाया जायेगा॥टेक॥
जिस पिंजरे को सदा सभी ने पाला-पोसा प्यार से।
खूब खिलाया खूब पिलाया, हरदम रखा संभार के॥
तेरे होते-होते इसको नीचे सुलाया जायेगा।
ओ प्यारे परदेशी पंछी, जिस दिन तू उड़ जायेगा॥1॥
देखे बिना तरसती आँखें, रहना चाहती साथ में।
तेरे बिना न खाती खाना, तू ही था हर बात में॥
तुझको पूछे बिना ही सारा, काम चलाया जायेगा।
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा॥2॥
रोयेगें थोड़े दिन तक, ये भूलेगें फिर बाद में।
ज्यादा से ज्यादा इतना कुछ करवा देंगे याद में॥
हलवा पूड़ी खाकर तेरा श्राद्ध मनाया जायेगा।
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा॥3॥
तुझे पता है क्या कुछ होता, फिर भी क्यों नहीं सोचता।
मूरख वह दिन भी आवेगा, पड़ा रहेगा सोचता॥
जन्म अमोलक[१] खोकर हीरा, पीछे तू पछतायेगा।
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड़ जायेगा॥4॥

१. अमूल्य

21

भूलकर अपना घर....

(आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द जैन कृत
जैन-सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला के सातवें भाग से संकलित)

भूलकर अपना घर, जाने कितनों के घर
तुझको जाना पड़ा ।टेक ॥

इस जहाँ में कई घर बनाये तूने ।
रिश्तेदारी सभी से निभाई तूने ॥
जिनके थे तुम पिता, उन्हीं को पिता, फिर बनाना पड़ा ॥1 ॥

जो थी माता कभी, वो ही पत्नी बनी ।
पत्नी से फिर तेरी भगिनी बनी ॥
रिश्ते बनते रहे, और बिछड़ते रहे, न ठिकाना मिला ॥2 ॥

बन के जलचर तू सबलों से खाया गया ।
होके नभचर तू जालों, फँसाया गया ॥
नरक पशुओं के गम, देखकर वो सितम, हाय रोना पड़ा ॥3 ॥

इस जहाँ की तो वधुऐं, अनेकों वरी ।
मुक्ति रानी न अब तक, मेरे मन बसी ॥
जिसने इसको वरा, इस जहाँ की धरा, फिर न आना पड़ा ॥4 ॥

22

आतम अनुभव करना....

(कविवर पण्डितश्री द्यानतरायजी)

आतम अनुभव करना रे भाई, आतम अनुभव करना रे।
जब लौं भेदज्ञान नहीं उपजै, जन्म-मरण दुःख भरना रे ॥टेक॥

आगम पढ़ नव तत्त्व बखाने, व्रत तप संयम धरना रे।
आतम ज्ञान बिना नहिं कारज, यौनी संकट परना रे ॥1॥

सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाई, मिथ्यातम को हरना रे।
कहा कहे ते अन्ध पुरूष को, जिन्हैं उपजना मरना रे ॥2॥

'द्यानत' जे भवी सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे।
सोऽहं ये दो अक्षर जप के, भवोदधि पार उतरना रे ॥3॥

शुद्धात्मा के ध्यान से मग्न, मुनिराज समूह

23

जो जो देखी वीतराग ने....

(कविवर पण्डितश्री भैय्याजी)

जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे,
बिन देख्यो होसो नहीं क्यों हो काहे होत अधीरा रे ॥1॥

समयो अक बढ़ै नहिं घटसी, जो सुख-दु:ख की पीरा रे,
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो[1], होय वज्र ज्यों हीरा रे ॥2॥

लगै न तीर कमान बान कहूँ, मार सके नहिं मीरा रे,
तूँ सम्हारि पौरुष-बल अपनौ, सुख अनन्त तो तीरा रे ॥3॥

निश्चय ध्यान धरहू वा प्रभु, को जो टारे भव की भीरा[2] रे,
'भैय्या' चेत धरम निज अपनो, जो तारे भवनीरा रे ॥4॥

१. मूरख; २. भय

24

चरखा चलता नाहीं...

(कविवर पण्डितश्री भूधरदासजी)

चरखा चलता नाहीं (रे) चरखा हुआ पुराना (रे) ॥

पग खूँटे दो हालन लागे, उर मदरा[१] खखराना।
छीदी हुई पांखड़ी पांसू[२], फिरै नहीं मनमाना ॥1॥
रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूटै।
शबद-सूत सूधा नहिं निकसे, घड़ी-घड़ी पल-पल टूटै ॥2॥
आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहे, वैद बाढ़ई हारे ॥3॥
नया चरखला[३] रंगा-चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखैं नहिं भावै ॥4॥
मोटा मही[४] कातककर[५] भाई!, कर अपना सुरझेरा[६]।
अन्त आग में ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा ॥5॥

तीर्थधाम मङ्गलायतन के परिक्रमामार्ग पर स्थापित, वैराग्यप्रेरक दृश्य

१. पहिये; २. छोटा चरखा; ३. चरखा; ४. पतला; ५. कातनेवाला; ६. सुलझन

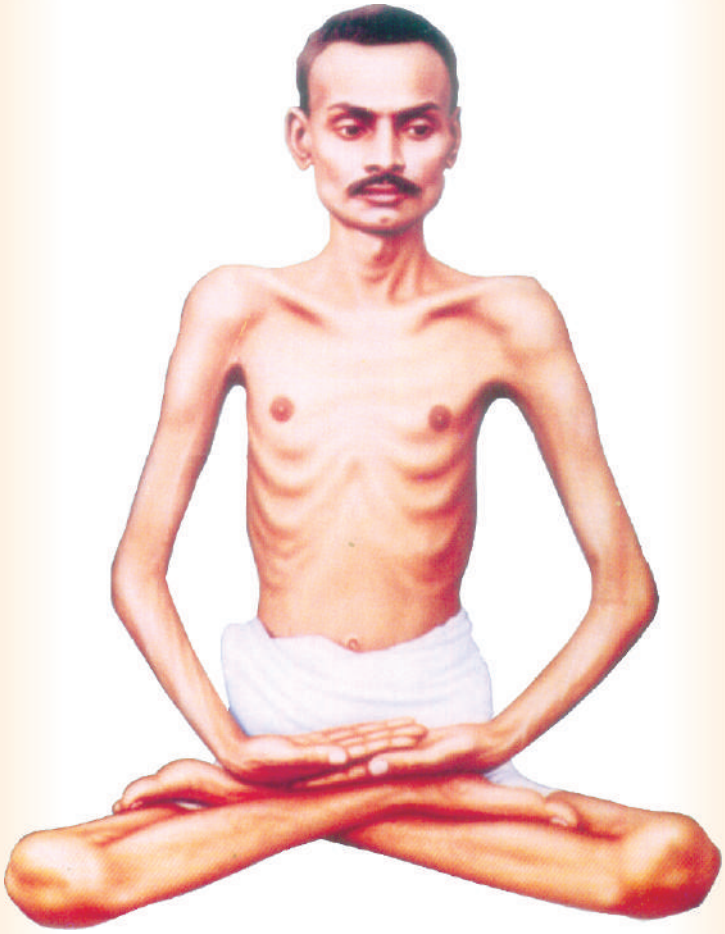

तीर्थधाम मङ्गलायतन के 'ध्यानकेन्द्र' में स्थापित
'श्रीमद् राजचन्द्रजी' का आत्मप्रेरक चित्र

खण्ड-4

आत्म-सम्बोधन

25

बहु पुण्य-पुञ्ज प्रसंग...

(अमूल्य तत्त्व-विचार)

(श्रीमद् राजचन्द्रजी)

बहु पुण्य-पुञ्ज प्रसङ्ग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला॥

सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है॥

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिये॥

संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तस्तत्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो॥

पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दु:ख भरा॥

मैं कौन हूँ आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दु:खमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या॥

इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये॥

किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे? वह स्वानुभूति प्रसूत है॥

तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिए।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिए॥

26

आत्म चिंतन का ये समय....

(आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द जैन कृत
जैन-सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला के सातवें भाग से संकलित)

आत्म चिंतन का ये समय आया।
पाके नरतन क्या खोया क्या पाया ॥ टेक ॥

हम जिसे ज्ञान-ज्ञान कहते हैं।
हमको इन्द्रियों ने है भरमाया ॥1 ॥

देखो पर्याय तो है क्षणभंगुर।
फिर भी तू पर्याय में इतराया ॥2 ॥

तू तो टंकोत्कीर्ण ज्ञायक है।
बस यही तू समझ नहीं पाया ॥3 ॥

एक क्षण निज में अब ठहर जाओ।
आखरी क्षण बस अब यही आया ॥4 ॥

27

सांत्वनाष्टक

(बालब्रह्मचारी पण्डितश्री रवीन्द्रजी, अमायन)

शान्तचित्त हो निर्विकल्प हो, आत्मन् निज में तृप्त रहो।
व्यग्र न होओ क्षुब्ध न होओ, चिदानन्द रस सहज पिओ ॥टेक॥

स्वयं स्वयं में सर्व वस्तुएँ, सदा परिणमित होती हैं।
इष्ट-अनिष्ट न कोई जग में, व्यर्थ कल्पना झूठी है॥
धीर-वीर हो मोहभाव तज, आतम-अनुभव किया करो ॥1॥

देखो प्रभु के ज्ञान माँहिं, सब लोकालोक झलकता है।
फिर भी सहज मग्न अपने में, लेश नहीं आकुलता है॥
सच्चे भक्त बनो प्रभुवर के ही पथ का अनुसरण करो ॥2॥

देखो मुनिराजों पर भी, कैसे-कैसे उपसर्ग हुए।
धन्य-धन्य वे साधु साहसी, आराधन से नहीं चिगे॥
उनको निज-आदर्श बनाओ, उर में समताभाव धरो ॥3॥

व्याकुल होना तो, दुख से बचने का कोई उपाय नहीं।
होगा भारी पाप बंध ही, होवे भव्य अपाय नहीं॥
ज्ञानाभ्यास करो मन माहीं, दुर्विकल्प दुखरूप तजो ॥4॥

अपने में सर्वस्व है अपना, परद्रव्यों में लेश नहीं।
हो विमूढ़ पर में ही क्षण-क्षण, करो व्यर्थ संक्लेश नहीं॥
अरे विकल्प अकिंचितकर ही, ज्ञाता हो ज्ञाता ही रहो॥5॥

अन्तर्दृष्टि से देखो नित, परमानन्दमय आत्मा।
स्वयंसिद्ध निर्द्वन्द्व निरामय, शुद्ध बुद्ध परमात्मा॥
आकुलता का काम नहीं कुछ, ज्ञानानन्द का वेदन हो॥6॥

सहज तत्त्व की सहज भावना, ही आनन्द प्रदाता है।
जो भावे निश्चय शिव पावे, आवागमन मिटाता है॥
सहजतत्त्व ही सहज ध्येय है, सहजरूप नित ध्यान धरो॥7॥

उत्तम जिन वचनामृत पाया, अनुभव कर स्वीकार करो।
पुरुषार्थी हो स्वाश्रय से इन, विषयों का परिहार करो॥
ब्रह्मभावमय मंगल चर्या, हो निज में ही मग्न रहो॥8॥

28

ज्ञानाष्टक

(बालब्रह्मचारी पण्डितश्री रवीन्द्रजी, अमायन)

निरपेक्ष हूँ कृतकृत्य मैं, बहु शक्तियों से पूर्ण हूँ।
मैं निरालम्बी मात्र ज्ञायक, स्वयं में परिपूर्ण हूँ॥
पर से नहीं सम्बन्ध कुछ भी, स्वयं सिद्ध प्रभु सदा।
निर्बाध अरु नि:शंक निर्भय, परम आनन्दमय सदा॥1॥

निज लक्ष से होऊँ सुखी, नहिं शेष कुछ अभिलाष है।
निज में ही होवे लीनता, निज का हुआ विश्वास है॥
अमूर्तिक चिन्मूर्ति मैं, मंगलमयी गुणधाम हूँ।
मेरे लिए मुझसा नहीं, सच्चिदानन्द अभिराम हूँ॥2॥

स्वाधीन शाश्वत मुक्त अक्रिय अनन्त वैभववान हूँ।
प्रत्यक्ष अन्तर में दिखे, मैं ही स्वयं भगवान हूँ॥
अव्यक्त वाणी से अहो, चिन्तन न पावे पार है।
स्वानुभव में सहज भासे, भाव अपरम्पार है॥3॥

श्रद्धा स्वयं सम्यक् हुई, श्रद्धान ज्ञायक हूँ हुआ।
ज्ञान में बस ज्ञान भासे, ज्ञान भी सम्यक् हुआ॥
भग रहे दुर्भाव सम्यक्, आचरण सुखकार है।
ज्ञानमय जीवन हुआ, अब खुला मुक्ति द्वार है॥4॥

जो कुछ झलकता ज्ञान में, वह ज्ञेय नहिं बस ज्ञान है।
नहिं ज्ञेयकृत किंचित् अशुद्धि, सहज स्वच्छ सुज्ञान है॥
परभाव शून्य, स्वभाव मेरा, ज्ञानमय ही ध्येय है।
ज्ञान में ज्ञायक अहो, मम ज्ञानमय ही ज्ञेय है॥5॥

ज्ञान ही साधन, सहज अरु ज्ञान ही मम साध्य है।
ज्ञानमय आराधना, शुद्ध ज्ञान ही आराध्य है॥
ज्ञानमय ध्रुव रूप मेरा, ज्ञानमय सब परिणमन।
ज्ञानमय ही मुक्ति मम, मैं ज्ञानमय अनादिनिधन॥6॥

ज्ञान ही है सार जग में, शेष सब निस्सार है।
ज्ञान से च्युत परिणमन का नाम ही संसार है॥
ज्ञानमय निजभाव को बस भूलना अपराध है।
ज्ञान का सम्मान ही, संसिद्धि सम्यक् राध है॥7॥

अज्ञान से ही बंध, सम्यग्ज्ञान से ही मुक्ति है।
ज्ञानमय संसाधना, दुख नाशने की युक्ति है॥
जो विराधक ज्ञान का, सो डूबता मंझधार है।
ज्ञान का आश्रय करे, सो होय भव से पार है॥8॥

यों जान महिमाज्ञान की, निजज्ञान को स्वीकार कर।
ज्ञान के अतिरिक्त सब, परभाव को परिहार कर॥
निजभाव से ही ज्ञानमय हो, परम-आनन्दित रहो।
होय तन्मय ज्ञान में, अब शीघ्र शिव-पदवी धरो॥9॥

गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
अपूर्व-अवसर अेवो क्यारे आवशे ?

29

अपूर्व-अवसर

(श्रीमद् राजचन्द्रजी)

अपूर्व-अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।
सम्बन्धों का बंधन तीक्षण छेद कर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ॥
अपूर्व..... ॥ 1 ॥

उदासीन वृत्ती हो सब परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब।
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं,
तन में किंचित भी मूर्छा नहिं होय जब।
अपूर्व.... ॥ 2 ॥

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो।
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब॥
चरित्र-मोह का क्षय जिससे हो जायेगा।
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब॥ 3 ॥

आत्मलीनता मन-वचन-काया योग की,
मुख्यरूप से रही देह पर्यंत जब।
भयकारी उपसर्ग परिषह हो महा,
किन्तु न होवेगा स्थिरता का अन्त जब॥ 4 ॥

संयम ही के लिए योग की वृत्ति हो,
निज आश्रय से, जिन आज्ञा अनुसार जब।
वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी,
होऊँ अन्त में निजस्वरूप में लीन जब॥ 5॥

पञ्च विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं,
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब।
द्रव्य-क्षेत्र अरु काल-भाव प्रतिबन्ध बिन,
वीतलोभ को विचरूँ उदयाधीन जब॥ 6॥

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता,
मान भाव प्रति दीनभावमय मान जब।
माया के प्रति माया साक्षी भाव की,
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब॥ 7॥

बहु उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब।
देह जाय पर माया नहिं हो रोम में,
लोभ नहिं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥ 8॥

नग्नभाव मुंडभावसहित अस्नानता,
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब।
केश-रोम-नख आदि अङ्ग शृङ्गार नहिं,
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रन्थ-सिद्ध जब ॥ 9॥

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता,
मान-अमान में वर्ते एक स्वभाव जब।

जन्म-मरण में हो नहिं न्यून-अधिकता,
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब॥ 10॥

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥ 11॥

घोर तपश्चर्या में, तन सन्ताप नहिं,
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन।
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की।
सबमें भासे पुद्गल एक स्वभाव जब॥ 12॥

ऐसे प्राप्त करूँ जय चारित्रमोह पर,
पाऊँगा तब करण अपूरव भाव जब।
क्षायिकश्रेणी पर होऊँ आरूढ़ जब,
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्धस्वभाव जब॥ 13॥

मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर,
प्राप्त करूँगा क्षीणमोह गुणस्थान जब।
अन्त समय में पूर्णरूप वीतराग हो,
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब॥ 14॥

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ,
हो भवतरु का बीज समूल विनाश जब।
सकल ज्ञेय का ज्ञाता-दृष्टा मात्र हो,
कृत्यकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जब॥ 15॥

चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो,
जली जेवरीवत् हो आकृति मात्र जब।
जिनकी स्थिति आयु कर्म आधीन है,
आयुपूर्ण हो तो मिटता तन-पात्र जब॥ 16॥

मन-वच-काया अरु कर्मो की वर्गणा,
जहाँ छूटे सकल पुद्गल सम्बन्ध जब।
यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जब॥ 17॥

इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता,
पूर्ण कलङ्कविहीन अडोल स्वरूप जब।
शुद्ध निरञ्जन चेतन मूर्ति अनन्यमय,
अगुरुलघु अमूर्त सहजपदरूप जब॥ 18॥

पूर्व प्रयोगादिक कारक के योग से,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब।
सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में,
अनन्तदर्शन ज्ञान अनन्त सहित जब॥ 19॥

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब॥ 20॥

यही परमपद पाने को धर ध्यान जब,
शक्तिविहीन अवस्था मनरथरूप जब।
तो भी निश्चय 'राजचन्द्र' के मन रहा,
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब ॥ 21॥

30

स्वतः परिणमति वस्तु के....

(आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द जैन कृत
जैन-सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला के सातवें भाग से संकलित)

स्वतः परिणमति वस्तु के, क्यों करता बनते जाते हो।
कुछ समझ नहीं आती तुमको, निःसत्व[1] बने ही जाते हो ॥1 ॥

अरे कौन निकम्मा जग में है, जो पर का करने जाता हो।
सब अपने अन्दर रमते हैं, तब किस विध करण[2] रचाते हो ॥2 ॥

वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है वही कर्ता है।
फिर मालिक के मालिक बनकर, क्यों नीति न्याय गमाते हो ॥3 ॥

सत् सब स्वयं परिणमता है, वह नहीं किसी की सुनता है।
यह माने बिन कल्याण नहीं, कोई कैसे ही कुछ कहता हो ॥4 ॥

---

१. अचेतन; २. कार्य

तीर्थधाम मङ्गलायतन की धन्य-मुनिदशा में
शुद्धात्मदेव के प्रतीकस्वरूप मोक्षकल्याणक प्रसंग का दृश्य

31

आत्मदेव-वन्दना

(कविवर पण्डितश्री राजमलजी पवैया, भोपाल)

आत्मदेव ही देव हैं महादेव बलवान।
निज अन्तर में जो बसा, शाश्वत सुख की खान॥

मैं आत्मदेव चैतन्य पुञ्ज, ध्रुव दर्शनभूत अतीन्द्रिय हूँ।
मैं तो ज्ञानात्मक निरालम्ब, परमात्म स्वरूप अतीन्द्रिय हूँ॥

मैं तो नारक अथवा मनुष्य, तिर्यञ्च देव पर्याय नहीं।
मैं उनका करता कारयिता कर्ता का अनुमन्ता न कहीं॥
मैं नहीं मार्गणा गुणस्थान अथवा मैं जीवस्थान नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता, कर्ता का अनुमन्ता न कहीं॥
मैं एक अपूर्व महा-पदार्थ, मैं पर द्रव्यों में अक्रिय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुञ्ज, ध्रुव दर्शनभूत अतीन्द्रिय हूँ॥1॥

मैं बाल नहीं मैं तरुण नहीं, मैं रोगी अथवा वृद्ध नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता, कर्ता का अनुमन्ता न कहीं॥
मैं राग नहीं मैं द्वेष नहीं, मैं मोह नहीं मैं क्षोभ नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता, कर्ता का अनुमन्ता न कहीं॥
मैं सहज शुद्ध चैतन्य विलासी, पर भावों में निष्क्रय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुञ्ज, ध्रुव दर्शनभूत अतीन्द्रिय हूँ॥2॥

मैं क्रोध नहीं मैं मान नहीं, मैं माया अथवा लोभ नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता, कर्ता का अनुमन्ता न कहीं॥

कर्तृत्व सकल का है अभाव, शुद्धातम को तो बंध नहीं।
रस गंध स्पर्श रूपादिक से, मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
मैं प्रकृतिभूत सुख का स्वामी, अपने स्वरूप में सक्रिय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुञ्ज, ध्रुव दर्शनभूत अतीन्द्रिय हूँ॥3॥

मैं प्रकृति प्रदेश स्थितिबंध, अनुभागबंध के पास नहीं।
औदारिक आहारक तैजस, कार्माण वैक्रियक वास नहीं॥
ये सब पुद्गल द्रव्यात्मक हैं, इनसे तो आत्म प्रकाश नहीं।
ऐसा दृढ़ निश्चय किये बिना, अज्ञान दशा का नाश नहीं॥
मैं ज्ञान सिन्धु परिपूर्ण शुद्ध, निर्वाण सुन्दरी को प्रिय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुञ्ज, ध्रुव दर्शनभूत अतीन्द्रिय हूँ॥4॥

आत्मदेव का आश्रय ही जग में है सार।
पूर्ण शुद्ध चैतन्य घन, मंगलमय शिवकार॥

32

चेतन क्यों पर अपनाता है....

(आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द जैन कृत
जैन-सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला के सातवें भाग से संकलित)

चेतन क्यों पर अपनाता है, आनन्दघन तू खुद ज्ञाता है ॥टेक॥

ज्ञाता क्यों करता बनता है, खुद क्रमबद्ध सहज पलटता है।
सब अपनी धुन में धुनता है, तब कौन जगत में सुनता है ॥1॥

उठ चेत जरा क्यों सोता है, फिर देख ज्ञान क्या होता है।
क्यों पर का बोझा ढ़ोता है, क्यों जीवन अपना खोता है ॥2॥

पर का तू करता बनता है, कर तो कुछ भी नहीं सकता है।
यह विश्व नियम से चलता है, इसमें नहीं किसी का चलता है ॥3॥

जो पर का असर मानता है, वह धोखा निश्चय खाता है।
जब जबरन का विष जाता है, तब सहज समझ में आता है ॥4॥

जो द्रव्य द्वारे आता है, वह जीवन ज्योति जगाता है।
सुखधाम चिन्तामणि ज्ञाता है, आनन्द अनुभव नित पाता है ॥5॥

33

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ,...

(डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर)

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।टेक॥

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझमें कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥1॥

मैं राग-रंग से भिन्न, भेद से, भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड चैतन्य पिण्ड, निज रस में रमनेवाला हूँ॥2॥

मैं ही मेरा कर्त्ता धर्ता, मुझमें पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझमें रमनेवाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं॥3॥

मैं शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक, पर परणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ॥4॥

34

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम....

(आत्म-कीर्तन)

(आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द जैन कृत
जैन-सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला के सातवें भाग से संकलित)

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा आतमराम।
मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ राग वितान॥1॥

मम स्वरूप है सिद्धसमान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिकारी निपट अजान॥2॥

सुख-दुःख दाता कोई न आन, मोह-राग-रुष दुःख की खान।
निजको निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेश निदान॥3॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्याग पहुँचूँ निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम॥4॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, ज्ञायकभाव लखूँ अभिराम॥5॥

35

चेतन है तू....

(पण्डित डॉ० विवेक जैन, छिन्दवाडा)

चेतन है तू, ध्रुव ज्ञायक है तू।
अनन्त शक्ति का धारक है तू॥
सिद्धों का लघुनन्दन कहा,
मुक्तिपुरी का नायक है तू।
चेतन है तू..... ।टेक॥

चार कषाय, दु:ख से भरी, तू इनसे दूर रहे,
पापों में जावे न मन दृष्टि निज में ही रहे।
चलो चलें अब मुक्ति की ओर,
पंचम गति के लायक है तू॥
चेतन है तू..... ॥1॥

श्री जिनवर से राह मिली, उस पर सदा चलना,
माँ जिनवाणी शरण सदा, बात हृदय रखना।
मुनिराजों संग केलि करे-2
मुक्ति वधू का नायक है तू॥
चेतन है तू..... ॥2॥

तीर्थधाम मङ्गलायतन की धन्य-मुनिदशा में
मुनिराज की आहरचर्या का भाववाही दृश्य

36

जिया कब तक उलझेगा...

(कविवर पण्डितश्री राजमल पवैया)

जिया कब तक उलझेगा संसार विकल्पों में।
कितने भव बीत चुके संकल्प-विकल्पों में॥
उड़-उड़ कर यह चेतन गति-गति में जाता है।
रागों में लिप्त सदा भव-भव दुःख पाता है॥
पल भर को भी न कभी निज आतम ध्याता है।
निज तो न सुहाता है पर ही मन भाता है॥
यह जीवन बीत रहा झूठे संकल्पों में॥जिया...॥
निज आत्मस्वरूप लखें तत्त्वों का कर निर्णय।
मिथ्यात्व छूट जाए समकित प्रगटे निजमय॥
निज परिणति रमण करे हो निश्चय रत्नत्रय।
निर्वाण मिले निश्चित छूटे यह भव दुखमय॥
सुख ज्ञान अनन्त मिले चिन्मय की गल्पों में॥जिया...॥
शुभ-अशुभ विभाव तजे हैं हेय अरे आस्रव।
संवर का साधन ले चेतन का ले अनुभव॥
शुद्धात्मा का चिन्तन आनन्द अतुल अनुभव।
कर्मों की पगध्वनि का मिट जायेगा कलरव॥
तू सिद्ध स्वयं होगा पुरुषार्थ स्वकल्पों में॥जिया...॥
यदि अवसर चूका तो भव-भव पछताएगा।
फिर काल अनन्त अरे दुःख का धन छाएगा॥
यह नर भव कठिन महा किस गति में जाएगा।
नर भव पाया भी तो जिनश्रुत ना पाएगा॥
अनगिनती जन्मों में अनगिनती कल्पों में॥जिया...॥

खण्ड-5

बारह-भावनाऐं

37

बारह-भावना

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी कृत छहढाला की पाँचवीं ढाल से)

(दोहा)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई॥
इन चिन्तत सम सुख जागैं, जिमि ज्वलन पवन के लागैं।
जब ही जिय आतम जानैं, तब ही जिय शिव सुख ठानैं॥

(अनित्यभावना)

जोवन[१] गृह गो[२] धन नारी, हय गय[३] जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु[४] चपला चपलाई॥

(अशरणभावना)

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरतैं न बचावैं कोई॥

(संसारभावना)

चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पञ्च करै हैं।
सब विधि संसार-असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा॥

(एकत्वभावना)

शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते।
सुत[५] दारा[६] होय न सीरी[७], सब स्वारथ के हैं भीरी[८]॥

---

१. यौवन; २. गाय; ३. हाथी-घोड़ा; ४. इन्द्रधनुष; ५. पुत्र; ६. स्त्री; ७. साथी; ८. सगे

(अन्यत्वभावना)

जल पय ज्यौं जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुतरामा॥

(अशुचिभावना)

पल रुधिर राध[१] मल थैली, कीकस[२] वसादि[३] तैं मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करैं किम यारी॥

(आस्रवभावना)

जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे॥

(संवरभावना)

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥

(निर्जराभावना)

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै॥

(लोकभावना)

किन हू न कर्‌यो न धरैं को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता॥

(बोधिदुर्लभभावना)

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त विरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ॥

(धर्मभावना)

जो भाव मोह तै न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै तब ही सुख अचल निहारै॥

---

१. पीव; २. हड्डी; ३. चर्बी

38

बारह-भावना

(कविवर पण्डितश्री जयचन्द छाबड़ा)

(अनित्यभावना)

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, परजय नय करि गौन ॥1॥

(अशरणभावना)

शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय।
मोह-उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय ॥2॥

(संसारभावना)

पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥3॥

(एकत्वभावना)

परमारथ तैं आत्मा, एक रूप ही जोय।
मोह निमित्त विकल्प घने, तिन नासे शिव होय ॥4॥

(अन्यत्वभावना)

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥5॥

(अशुचिभावना)

निर्मल अपनी आत्मा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह ॥6॥

(आस्रवभावना)

आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रवभाव विडार ॥7॥

(संवरभावना)

निजस्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरै पाप की हानि ॥8॥

(निर्जराभावना)

संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निजस्वरूप को पाय कर, लोक शिखर ठहराय ॥9॥

(लोकभावना)

लोकस्वरूप विचारि कें, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥10॥

(बोधिदुर्लभभावना)

बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥11॥

(धर्मभावना)

दर्श-ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया-क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ॥12॥

39

बारह-भावना

(बाबू जुगलकिशोर जैन 'युगलजी', कृत
श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन की जयमाला)

(पद्धरि)

भव-वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥

(अनित्यभावना)

झूँठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ।
तन-जीवन यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुराझायें॥

(अशरणभावना)

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥

(संसारभावना)

संसार महा दु:खसागर के, प्रभु दु:खमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन[१]-कामिनी[२] प्रासादों[३] में॥

(एकत्वभावना)

मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते॥

(अन्यत्वभावना)

मेरे न हुए ये, मैं इन से, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम-रस पीने वाला हूँ॥

१. स्वर्ण; २. स्त्री; ३. महल

(अशुचिभावना)

जिसके शृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता॥

(आस्रवभावना)

दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता॥

(संवरभावना)

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल॥

(निर्जराभावना)

फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वाङ्ग निजात्मप्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें॥

(लोकभावना)

हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निजलोक हमारा वासा हो, शोकान्त बने फिर हमको क्या॥

(बोधिदुर्लभभावना)

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय-तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे॥

(धर्मभावना)

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी॥

तीर्थधाम मङ्गलायतन में स्थापित कृत्रिम कैलाशपर्वत पर,
ध्यानमग्न वीतरागी मुनिराज

40

बारह-भावना

(कविवर पण्डितश्री मंगतरायजी)

(दोहा)

वन्दू श्री अरहन्त पद, वीतराग विज्ञान।
वरणों बारह भावना, जग जीवन हित जान॥

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम रु लछमन, जिन रावण मारा॥
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु सम्पत्ति सगरी।
कहाँ गये वह रङ्गमहल अरु, सुवरन की नगरी॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पाँडव वन को, अग्नि लगी तन में॥
मोह नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें, गुरु बारह भावन को॥

(अनित्यभावना)

सूरज चाँद छिपै निकले, ऋतु फिर-फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावे॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बहकर नहिं हटता।
स्वाँस चलत यों घटे काठ ज्यों, आरे सों कटता॥
ओस बूँद ज्यों गले धूप में, वा अन्जुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी॥
इन्द्रजाल आकाश नगर सम, जग सम्पत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी॥

(अशरणभावना)

काल सिंह ने मृग चेतन को घेरा, भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में॥
मन्त्र यन्त्र सेना धन सम्पत्ति, राज-पाट छूटे।
वश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे॥
चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया॥
देव धर्म गुरु शरण जगत् में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई॥

(संसारभावना)

जनम मरण अरु जरा रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशू गति, वध बन्धन सहना।
राग उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥
भोगि पुण्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पञ्चम गति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखा॥

(एकत्वभावना)

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख-दुःख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी॥
कमला[१] चलत न पेंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने-अपने सुख को रोवे, पिता-पुत्र दारा॥
ज्यों मेले में पन्थी जन मिली, नेह फिरे धरते।
ज्यों तरुवर पैं रैन बसेरा, पन्छी आ करते॥

१. पत्नी

कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारे।
जाय अकेला हंस सङ्ग में, कोई न पर मारे॥

(अन्यत्वभावना)

मोहरूप मृग तृष्णा जल में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दोड़े थक-थक के॥
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन में बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जोलों पौरुष थके न तो लों, उद्यम सो चरना॥

(अशुचिभावना)

तू नित पोखे[१], यह सूखे, ज्यों धोवे त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली॥
मात पिता रज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
माँस हाड़ नश लहू राध की प्रगट व्याधि घेरी॥
काना पौण्डा पड़ा हाथ यह चूँसे तो रोवे।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवे॥
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसतें होय, अपावन निश दिन मल जारी॥

(आस्रवभावना)

ज्यों सर जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को॥
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निश दिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को॥

१. सम्हालना

पन मिथ्यात् योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो।
पञ्च रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो॥
मोहभाव की ममता टारे, पर परिणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव ज्ञानी जन होते॥

(संवरभावना)

ज्यों मोरी[१] में डाट[२] लगावे, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर क्यों नहिं मन लाता॥
पञ्च महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।
दश विध धर्म परीषह बाईस, बारह भावना को॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्धि, भावन संवर पावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मँझधार पार जावै॥

(निर्जराभावना)

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म, निर्जरा हैं सोखन हारि॥
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावें, पाल विषै माली॥
पहली सबके होय नहीं कुछ, सरे काम तेरा।
दूजी करे जु उद्यम करके, मिटे जगत् फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुक्ति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी॥

(लोकभावना)

लोक अलोक आकाश माँहि थिर, निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये, षट् द्रव्य सों मानों॥

१. नाली / छिद्र; २. ढक्कन

इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है।
जीव रु पुद्गल नाचे यामैं, कर्म उपाधि है॥
पाप-पुण्य सों जीव जगत् में, नित सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर औरन के धरता॥
मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आशा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा॥

(बोधिदुर्लभभावना)

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी॥
उत्तम देस सुसङ्गति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पञ्चम गुणठाना॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥
दुर्लभ तैं दुर्लभ हैं चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान, नहीं फिर इस भव में आवै॥

(धर्मभावना)

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहुतेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे॥
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावे।
कोई छिनक कोई करता से जग में भटकावे॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्री जिन की वाणी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सब को सुख दानी॥
इनका चितवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मङ्गत' इसी जतन तें इक दिन, भव सागर तरना॥

तीर्थधाम मङ्गलायतन की **धन्य-मुनिदशा** में स्थापित, संघ के आचार्य व अन्य निर्यापक
मुनि-भगवन्तों द्वारा, समाधि के समय, मुनिराज की वैयावृत्ति का अति वैराग्यपोषक दृश्य

खण्ड-6

समाधिमरण

41

समाधिमरण पाठ

(कविवर पण्डितप्रवर श्री शिवलालजी)

परम पंच परमेष्ठी का ध्यान धर,
परमब्रह्म का रूप आया नजर।
परमब्रह्म की मुझको आई परख,
हुआ उर में संन्यास का जब हरख ॥1॥

लगन आत्मा राम सों लग गई,
मेरी मोह निद्रा सभी भग गई।
लगी दृष्टि चेतन चिद्रूप पर,
टिकी ब्रह्म के ज्ञान के रूप पर ॥2॥

परमब्रह्म की अब रटारट मेरे,
निजानन्द रस की गटागट मेरे।
यहाँ आज रोने का क्या शोर है,
मेरे हर्ष-आनन्द का जोर है ॥3॥

निरंजन की कथनी सुनाओ मुझे,
नहीं और बतियाँ बताओ मुझे।
न रोओ मेरे पास इस वक्त में,
मैं तिष्ठा हूँ खुशहाल खुश वक्त में ॥4॥

जरा रोने का अब तअम्मुल[1] करो,
नजर मेहरबानी[2] की मुझ पर धरो।
उठो अब मेरे पास से सब कुटुम्ब,
तजा मोह मिथ्यात का भय विडम्ब ॥5॥

१. विराम; २. कृपा

जरा आत्मा भाव उर आने दो,
परम ब्रह्म की लय मुझे ध्याने दो।
मुझे ब्रह्मचर्चा से वर्ते हुलाश[1],
करो और चर्चा न कुछ मेरे पास ॥6॥

जो भावे तुम्हें सो न भावे मुझे,
न झगड़ा जगत का सुहावे मुझे।
ये काया पे पुटकी[2] पड़ी मौत की,
याद आई है शिवलोक के नाथ की ॥7॥

यह देह चिरकाल से है मुई[3],
मेरी जिन्दगानी से जिन्दा भई।
तजा हमने नफरत से यह मुर्दा आज,
चलो यार चलकर करें मुक्तिराज ॥8॥

जिसम[4] झोपड़ी को लगी आग जब,
हुई मेरे वैराग्य की जाग तब।
संभाले ये अपने रतन मैंने तीन,
लिया अपने आपको मैं आप चीन्ह ॥9॥

जिसे मौत है उसको मुझको है क्या ?
मुझे तो नहीं फिर भय मुझको क्या ?
मेरा नाम तो जीव है जीव हूँ,
चिरंजीव चिरकाल चिरंजीव हूँ ॥10॥

अखंडित अमंडित अरूपी अलख,
अदेही अगेही अनेही निरख।
परम ब्रह्मचर्य परम शान्तितम,
निरालोक लोकेश लोकोत्तम ॥11॥

१. उत्साह; २. पोटली; ३. मृत; ४. शरीर

परमज्योति परमेश परमात्मा,
परमशुद्ध परमसिद्ध शुद्धात्मा।
चिदानन्द चैतन्य चिद्रूप हूँ,
निरंजन निराकार शिवभूप हूँ ॥12॥

ये देह तज कर चले आज हम,
चिता में धरो इसको ले जाके तुम।
कहीं जाओ यह देह क्या इससे काम,
तजी इससे रगवत[1] मोहब्बत तमाम ॥13॥

मुवे संग रहकर बहुत कुछ मुये[2],
मगर आज निरगुण निरंजन भये।
मिली आज संन्यास की यह घड़ी,
मेरे हाथ आई ये अद्‌भुत जड़ी ॥14॥

विषयविष से निर्विष हुआ आज मैं,
चलाचल से निश्चल हुआ आज मैं।
परम भाव अमृत पिया आज मैं,
नर भव का लाहा[3] लिया आज मैं ॥15॥

घटा आत्म उपयोग की आई झूम,
अजब तुर्फ तुरियाँ बनी रंगभूमि।[4]
शुक्लध्यान टाली[5] की टंकोर[6] है,
निजानन्द झांझन[7] की झंकोर है ॥16॥

अजर हूँ अमर हूँ न मरता कभी,
चिदानन्द शाश्वत् न डरता कभी।
कि संसार के जीव मरते डरें,
परम पद का 'शिवलाल' वन्दन करें ॥17॥

---

१. लगाव; २. मृतक शरीर के लगाव से बहुत मरे हैं; ३. लाभ; ४. विचित्र समस्याओं की रंगभूमि बन गयी; ५. घण्टी; ६. घण्टनाद; ७. पायल

निरन्तर चिन्तनयोग्य कुछ बिन्दु.....

- जीवन में अहम् के स्थान पर, मैं निराभिमानता ला सकूँगा या नहीं ?
- क्रोध के समय, शान्ति रख सकूँगा या नहीं ?
- द्वेष के स्थान पर, समभाव रख सकूँगा या नहीं ?
- अपना दु:ख भूलकर, दूसरे के दु:ख में, सहभागी हो सकूँगा या नहीं ?
- अपेक्षा के झमेले में, सन्तों को स्मरण कर, निरपेक्षता ला सकूँगा या नहीं ?
- कर्तापने के कोलाहल में, स्वभाव का स्मरण कर पाऊँगा या नहीं ?
- अच्छा दिखने के बजाय, अच्छे बनने के लिए प्रयत्नशील रह पाऊँगा या नहीं ?
- मतभेद के समय मैं, मौन का उपहार, दे पाऊँगा या नहीं ?
- 'मैंने किया, मैंने किया'—के कर्तृत्व के समक्ष, अकर्ताभाव की भावना, रख सकूँगा या नहीं ?
- यशकर्म के योग से कदाचित् सम्मान मिले, तो मैं बिल्कुल पीछे खड़े रहकर, नत-मस्तक रह पाऊँगा या नहीं ?
- अपयशकर्म के योग से अपमान मिले, तो मीठी आलोचना समझकर, स्वीकार कर सकूँगा या नहीं ?
- पैसा मिला, पुण्य से और शरीर मिला, धूल से, इसके अलावा अपने जीवन में, मैं कुछ सृजन कर पाऊँगा या नहीं ?
- पुण्य का लोभ, वो अनन्तानुबन्धी का लोभ है। उस लोभ के प्रति, मैं निर्लोभी रह पाऊँगा या नहीं ?
- 'मैंने बहुत सहन किया'—इस भँवर में डूबने के बजाय, मैं सर्व उपाधि से अलग हूँ—इस विचार से तैर पाऊँगा या नहीं ?

- जीवन में अकाल से (अचानक) आयी हुई एकलता को पिघलाकर, स्वभाव से समृद्ध रह पाऊँगा या नहीं ?
- जीवन में संयोगों के प्रति ना तो कुछ घटाना है और ना ही कुछ बढ़ाना है। यह गणित, मैं गिन पाऊँगा या नहीं ?
- जीवन में आये झंझावात के समय, मैं अडोलवृत्ति रख सकूँगा या नहीं ?
- अपनी पहाड़ जैसी मुश्किल को, राई समान समझकर और दूसरे की राई जैसी मुश्किल को, पहाड़ जैसी गिनने की विनम्रता ला सकूँगा या नहीं ?
- मुझे कोई प्रश्न हो तो वो मैं नि:संकोचभाव से पूछ सकूँगा या नहीं ?
- अपनी भूलों के प्रति, सर्वदा आत्म आलोचना कर सकूँगा या नहीं ?
- देव-शास्त्र-गुरु के प्रति मुझमें असीम अर्पणता आ पायेगी या नहीं ?
- मुमुक्षुमात्र के लिए हृदय के द्वार खुले रख सकूँगा या नहीं ?
- खोखले व्यवहार की अपेक्षा, निश्चय के सुन्दर पल जी पाऊँगा या नहीं ?
- मौन और सद्गुण से भरा हृदय, उससे बढ़कर कोई भाषा नहीं है। यह वाक्य, पढ़ पाऊँगा या नहीं ?
- अपने संस्कार या संयम के लिए, केवल उपादान पर निर्भर रह सकूँगा या नहीं ?
- कोई असाध्य रोग आ जाये, तो हँस कर स्वीकार कर पाऊँगा या नहीं ?
- मेरे स्वजन मुझे चादर ऊढ़ायें, उसके पहले मैं सत्कार्यों, सद्गुणों और क्षमारूपी चादर, अपने आप ओढ़ पाऊँगा या नहीं ?
- सोनगढ़ के सन्तों के प्रति कृतज्ञ रह पाऊँगा या नहीं ?

+91 99979 96346

www.mangalayatan.com

info@mangalayatan.com

Teerthdham Mangalayatan,
Agra road Aligarh - U.P. (India)

SCAN & DOWNLOAD